यशवंत व्यास का कृतित्व : एक अध्ययन

गरिमा श्रीवास्तव एंव सन्निधि शर्मा

MS Received June, 2013; Reviewed July, 2013; Accepted August, 2013

मात्र उन्चास वर्ष की आयु में यशवंत व्यास पत्रकारिता एवं साहित्य सृजन की नई ऊँचाईयों को सृजित कर चुके है। इन्होंने लीक को छोड़कर नये प्रयोगों के माध्यम से साहित्य जगत को समृद्ध किया है और अपनी अमिट छाप छोड़ी है। प्रस्तुत शोध पत्र यशवंत व्यास के साहित्य में से तीन पुस्तकों का पुनरावलोकन कर उनके साहित्यकार के रूप में किये गये शाब्दिक और अभिव्यक्ति प्रयोगों की मीमांसा का प्रयास है। 'यारी–दुश्मनी' समाचार पत्रों में उनके लिखे व्यंग्य लेखों का संकलन है, जबकि 'कामरेड गोडसे' उन्हें श्रेष्ठतम् उपन्यासकार के रूप में स्थापित करता है। यह साम्प्रदायिकता, मीडिया तथा समकालीन विद्रूप पर रचा गया कालजयी उपन्यास है। 'अमिताभ का "अ"' महानायक अमिताभ बच्चन के जीवन पर प्रथम प्रमाणिक अध्ययन है, जो यशवंतजी की नवोन्मेषी भाषा–शौली के कारण विशिष्ट बन पड़ा है।

मुख्य शब्द : समकालीन उपन्यास, सृजनात्मक कौशल, लेखन की मुख्य प्रवृत्तियां।

1964 की 6 मार्च को मध्यप्रदेश के मंदसौर में जन्मे यशवंत समकालीन पत्रकार जगत में सृजन एवं नवाचार का पर्याय है। शब्दसाधक यशवंत व्यास की रचनात्मकता का एक ध्रुव पत्रकारिता है तो दूसरा ध्रुव साहित्य सृजन है। पत्रकारिता में "नई दुनिया" से इन्होंने अपनी यात्रा प्रारम्भ की जो दैनिक नवज्योति, दैनिक भास्कर और अब अमर ऊजाला तक अनवरत जारी है। यशवंत व्यास का सृजन संसार नये प्रयोगों, नई अभिव्यक्तियों को उजागर करता है। इन्हें मीडिया में कई नये प्रयोगों के लिये जाना जाता है। नई तकनीक, विशेष प्रस्तुति तथा नवोन्मेषी भाषा–शैली के कारण उनकी पहचान बहुत जल्दी बन गई। उनकी पहली किताब 'जो सहमत हैं, सुनें!' मध्यप्रदेश साहित्य परिषद से प्रकाशित हुई। 'अपने गिरेबान में' शीर्षक से लिखी पुस्तक में पत्रकारिता बाजार और टेक्नोलोजी के अंर्तसंबंधों की कसौटी पर क्षेत्रीय अखबारों में आने वाले बदलावों पर विमर्श प्रस्तुत किया।

यशवंत व्यास के लेखन और पत्रकारिता में शोषितों–वंचितों के पक्ष में तथा सामाजिक विडंबनाओं के विरूद्ध प्रखर स्वर होता है। उन्होंने न सिर्फ साहित्यिक बल्कि इतर विषयों पर भी प्रचुर लेखन किया है। फिल्मों के महानायक अमिताभ बच्चन के ब्रांड को विश्लेषित करने वाली कृति 'अमिताभ का "अ"' सिनेमा पर लिखी गई महत्वपूर्ण कृतियों में से एक है। कॉरपोरेट कार्यप्रणाली को करीब से देखने के बाद कर्मचारियों के पक्ष में एक अद्भुत किताब 'द बुक ऑफ रेजर मैनेजमेंट' भी उन्होंने लिखी। हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में 'हिट उपदेश' नाम से चर्चित इस किताब में मैनेजमेंट की भाषा में हितोपदेश की कहानियों को नई कॉरपोरेट कार्य व्यवस्था में काम करने वालों के लिये प्रस्तुत किया गया है। इस किताब पर चेतावनी लिखी हुई है– "यह किताब काम करने वालों की तरफ से लिखी गई है। काम देने वाले इसे सख्त सुरक्षा में रखें।"

यशवंत व्यास की 56 व्यंग्य रचनायें भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित पुस्तक "अब तक छप्पन" में संग्रहित है। उनका उपन्यास 'कॉमरेड गोडसे' बिहारी पुरस्कार से सम्मानित है तथा एक अन्य

उपन्यास 'चिंताघर' मध्यप्रदेश साहित्य परिषद से सम्मानित हुआ है। उनकी नई किताब 'ख्वाब के दो दिन' इन दोनों उपन्यासों की समान पृष्ठभूमि का अनूठा संयोजन है। देश की राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा साहित्यिक सभी प्रकार से समसामयिक मुद्दों पर उन्होंने व्यंग्यविनोद की शैली में जो विचारोत्तेजक और दिल को छू लेने वाली टिप्पणियाँ लिखी है वे अखबारी टिप्पणियों की तरह तत्कालीन महत्व की न होकर कालजयी महत्व रखती है। अतः अपने लिखे जाने के दशक–दो दशक बाद भी ये टिप्पणियाँ अपनी प्रासंगिकता नहीं खोती है। इन लेखों की संकलित पुस्तक 'यारी दुश्मनी' इस दृष्टि से यशवंत की पुस्तकों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यशवंत का सृजनशील व्यक्तित्व अपने विशिष्ट कौशल के साथ प्रकट होता है। उपन्यासकार के रूप में सन् 1996 में प्रकाशित उनके पहले उपन्यास 'चिंताघर' ने उन्हें एक विख्यात उपन्यासकार का स्थान दिला दिया। इसके ठीक एक दशक बाद सन् 2006 में उनका दूसरा उपन्यास आया 'कॉमरेड गोडसे'। साम्प्रदायिकता, मीडिया और समकालीन विद्रूप पर रचा गया यह ऐसा कालजयी उपन्यास है जिसकी गिनती 21वीं सदी के श्रेष्ठतम हिन्दी उपन्यासों में होती है। हिन्दी साहित्य के कुछ विद्वानों के मत में यह उपन्यास भीष्म साहनी द्वारा देश विभाजन की पृष्ठभूमि पर लिखे गये साम्प्रदायिक घटनाओं पर आधारित सुप्रसिद्ध उपन्यास 'तमस' का अग्रपाठ है।

'यारी–दुश्मनी' यशवंत व्यास की पत्रकारिता दृष्टि और सृजनात्मक कौशल को जानने समझने की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण पुस्तक है। समाचार पत्रों में 'यारी–दुश्मनी' नामक नियमित स्तम्भ में अपने लिखे गये व्यंग्य लेखों को इसमें संकलित किया गया है। देश के राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, साहित्यिक किस्म के समसामयिक मुद्दों पर उन्होंने व्यंग्य–विनोद की भाषा में जो टिप्पणियां अथवा लेख लिखे हैं, उनमें से कुछ चुने हुए लेख संकलित कर यह पुस्तक तैयार की गई है।

'तंदूर में औरत' लेख देश के अत्यधिक चर्चा में आए तंदूर काण्ड पर आधारित है। उस हृदय विदारक और नृशंस घटना से सभी परिचित है, जिसमें दिल्ली में एक युवती को कुछ ऊंची पहुंच वाले दरिन्दों ने तन्दूर में डाल कर हत्या कर दी थी। राजनीति और तन्दूर काण्ड के भयानक संबंधों को उजागर करने वाले इस व्यंग्य लेख में कातिल दिल्ली से चलकर रास्ते में एक साधारण सी जगह के ढाबे पर जहां सवारियां उतरकर खाना खाती है, सादा–खाना खाते हुए अपने कत्ल करने के तरीकों और विचारों को सहजता से प्रकट करता है और वर्तमान राजनीति के कुत्सित चेहरे को प्रकट करता है। उसके संवाद के कुछ अंश दृष्टव्य हैं,

> ''वह निवाला तोड़ते हुए बोला ' तुमने औरतों को रोटी बनाते हुए देखा होगा, अब तक। अब कभी उन्हें रोटी बनाकर देखना। कितना मजा आता है।''(पृष्ठ 6)
>
> उक्त अंश यशवंत व्यास की रूपक रचने की कला और राजनीतिक गुण्डा–गर्दी को एक साथ प्रकट करता है।

'हरे सांप की कविता' लेख पर्यावरण की राजनीति करने वाले लोगों पर व्यंग्य है। एक स्थान पर लेखक लिखता है कि ''निश्चित हरे धन्धे में काफी हरा ही हरा है।'' वस्तुतः यहां लेखक ने पर्यावरण का शोर मचाते हुए अपनी जमीन सुरक्षित करने वाली तथाकथित अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं और तथाकथित समाज के सुधारक ठेकेदारों पर व्यंग्य किया है, जो रंगे सियारों की

तरह हरापन ओढ़कर पर्यावरण के धन्धे में जुटे गये हैं। इस विचारोत्तेजक लेख के अन्त में लेखक यह बताने से नहीं चूकता कि ऐसे लोग कितना ही हरी दूब जैसे बन जाये, चिड़ियों के द्वारा वे पहचान ही लिये जाते हैं। वे लिखते हैं कि,

> ''मुझे हैरत सिर्फ इस बात से हुई कि सांप हरा था, लॉन हरा था सब कुछ हरा था, फिर भी चिड़ियाएं सांप को हरियाली में शामिल क्यों नहीं मान रही थी और यह भी कि, एक हरा सांप अपने हरेपन के बावजूद, अलग से सांप की तरह कैसे पहचान लिया गया?''(पृष्ठ 15)
>
> लगा कि चिड़ियाएं राजनीति में फंस भले ही जाती हो एस्ट्रों टर्फ और हरी घास पर कभी गलती नहीं करतीं।''

लेख 'एक गोष्ठी तीन दीवाने' बन्द कमरों में प्रायोजित की जाने वाली साहित्यिक गोष्ठियों पर गहरा व्यंग्य है । समीक्षा गोष्ठियों के नाम पर जिस तरह 'प्रिय भाईवाद' से ग्रस्त दो–चार भाई लोग एक कमरे या लॉन या कॉफी हाउस में बैठकर इधर–उधर बे सिर–पैर की बातों को विदेशी उद्धरणों के हवाले से परोसते हैं वह देखने लायक होता है और बेचारी समीक्ष्यकृति का कथ्य इसी इन्तजार में टुकुर–टुकर देखता रहता है कि कभी तो उस पर भी कुछ बात होगी। यशवंत व्यास ने गोष्ठीकारों द्वारा इधर–उधर से मारकर इकठ्ठे किये हुए विदेशी जुमलों को अपने हर वक्तव्य में फिट करने की प्रवृत्ति का खूब मजा लिया है।

'टीचर के आगे दो टीचर' नामक हास्य विनोद का पुट लिये व्यंग्य लेख में एक प्रसिद्ध पहेली "तीतर के दो आगे तीतर" का कायान्तरण करके शिक्षकों की मनः स्थिति और भूमिका की खासी खबर ली है।

'दुर्लभ संयोग की दास्तान' लेख सन् 1995 के किसी महिने में अखबार में छपी दो खबरों पर आधारित है। यह व्यंग्य लेख हमारे विवेकशून्य घालमेलपन की वृत्ति पर करारी टिप्पणी करता है। हरियाणा के पूर्व मुख्यमंत्री श्री भजन लाल को हरियाणा साहित्य अकादमी का अध्यक्ष बना दिया गया, यह थी पहली खबर। दूसरी खबर थी एक महिला मण्डल ने एक प्रसिद्ध धार्मिक पर्व पर एक ही दिन तीन प्रतियोगिताएं रखी–आरतीथाल सजाओ,मेहन्दी लगाओ,माण्डना माण्डो और सौन्दर्य साम्राज्ञी प्रतियोगिता।

सर्व साधारण के लिए यह खबर यद्यपि कोई महत्व नहीं रखती, नितांत घटना रहित होने के कारण बिल्कुल साधारण खबर की तरह थी। किन्तु साहित्यकारों और संस्कृतिकर्मियों के लिए ये अकल्पनीय दुर्घटना से कम नहीं थी। यशवंत व्यास ने इन्हें अपने लेख का आधार बना कर एक सजग, संस्कृतिकर्मी होने का परिचय तो दिया ही है। सांस्कृतिक संदर्भों में हमारा ध्यान उस ओर भी आकृष्ट किया है, जहां हमारी नजर नहीं जाती। आरती जैसे आध्यात्मिक विषय में सौन्दर्य प्रतियोगिता का आधुनिक जायका मिलाने के घालमेलपन पर व्यंग्य करते हुए, वह लिखते हैं कि,

> ''भजन जी से उधर यह संकेत मिला और इधर यह खबर कि 'आरती–भजन थाल सजाओ' प्रतियोगिता के साथ एक महिला मंडल ने 'सौन्दर्य साम्राज्ञी प्रतियोगिता' परंपरा से समकालीनता 'तड़' करके जुड़ गई। इसे कहते हैं सांस्कृतिक जड़ता खत्म करके ताजा हवा के झोंके पैदा करना।''(पृष्ठ 52)

'देश, दिशा और दरवाजे' व्यंग्य आंध्रप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री एन. टी. रामाराव द्वारा सचिवालय में प्रवेश के मुख्य द्वार को तोड़कर पूर्व दिशा में नया द्वार बनाने की घटना पर आधारित है रामाराव को ज्योतिषियों ने सलाह दी कि, वे सचिवालय भवन में पूर्व दिशा की ओर से प्रवेश करें और उत्तर की ओर बाहर निकलेंगे तो शुभ होगा। यह सच है कि विगत दो दशकों से देश में ज्योतिषियों और वास्तुशास्त्रियों की बाढ़ सी आ गई है। समाचार पत्रों और चैनलों में खबरों और विज्ञापनों में इन्होंने अपना कब्जा जमा रखा है। यह हमारे बढ़ते हुए लोभ–लालच और भय का सूचक है। लेखक वास्तुशास्त्रियों के पाखण्ड के साथ ही मकान से वंचित किरायेदारों की स्थिति का जोरदार चित्रण करता है।

'डंकल हॉरर शो' सूचना क्रांति और वैश्वीकरण के बीच आर्थर डंकल द्वारा तैयार किए गए बौद्धिक सम्पदा कानून ने देश में तहलका मचा दिया। भारतीय वृक्ष नीम, बासमती चावल और हल्दी को पेटेन्ट कराने के लिए जब अमेरिका ने दावा किया तो देशभर में तूफान खड़ा हो गया। समाचार–पत्रों की सुर्खियां आये दिन डंकल के विरोध में और सम्पादकीय पेटेन्ट, बौद्धिक सम्पदा, कानून, स्वदेशी, वैश्वीकरण, मुक्त बाजार आदि चर्चाओं से भरे पड़े रहते थे। इधर बॉलीवुड में हॉरर फिल्मों के लिए विख्यात रामसे ब्रदर्स ने कुछ और हॉरर शो तैयार किए थे। बिड़म्बना यह थी कि हॉरर शो के नाम पर जो बचकाने प्रयोग इसमें किए गए वे माथा पीटने लायक होते थे। यशवंत व्यास इनका चुटिला परिचय इस प्रकार देते हैं –

> ''गए कामसे के तीन भाई, दो बेटे, एक पत्नी तथा कुछेक बहुएँ थीं। इनमें से एक लिखता था, दूसरा बोलता था, तीसरा खींचता था, चौथा विदेशी फिल्में देखता था, शेष सब मिलकर एक नई फिल्म का नाम रखते थे। फिल्मे जैसी भी थी, उनके बारे में कहा जाता है कि दो–दो गज जमीन खोदने पर भी उनकी ख्याति हरहराती थी।''(पृष्ठ 65)

इस वर्णन के उपरान्त यशवंत डंकल, नीम, किस्सा चिमटे वाले बाबा का, स्वेदशी आन्दोलन का रामसे हॉरर शो की तर्ज पर जो ताना–बाना बुनते हैं वह भारतीय जनमानस की भावनाओं और बिडम्बना को प्रस्तुत करता है।

'शानदार आड़ की तलाश में' व्यंग्यलेख सुष्मिता सेन के विश्वसुन्दरी चुन लिये जाने की घटना पर आधारित है। यशवंत इस लेख में कहते हैं कि भारत के प्रधानमंत्री के अमेरिकी संसद में भाषण देने और सुष्मिता सेन के सिर पर विश्वसुन्दरी का ताज धारण करने की इन दोनों घटनाओं को लेकर दूरदर्शन समाचार वाचिका ने दोनों क्षणों को भारत के सौभाग्यशाली क्षण कहकर पुकारा है। वे सुष्मिता के विश्वसुन्दरी का खिताब पाने की घटना पर लोगों के आनन्दित होने का रोचक चित्रण करते हैं और बहुत बारीकी के साथ यह जाहिर करते हैं कि किस तरह अलग–अलग आड़ लेकर मुग्ध हुआ जा सकता है। सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में देश की संस्कृति का पतन देखने वाले लोग भी किस प्रकार इस आनन्द सागर में गोते लगा रहे हैं। इसके कुछ अंश दृष्टव्य हैं,

> ''सुष्मिता मूलतः सौन्दर्य शालिनी है। उसकी कविता एक उपकारी सुन्दरी का 'बाई प्रोडक्ट' (उप उत्पाद) है। उसकी हमें इज्जत करना चाहिए कि वह जिस सौन्दर्य से टेलीविजन बेचती है, उसी सौन्दर्य से साहित्य का उपकार भी करेगी।''(पृष्ठ 75)

'कॉफी में क्रौंच वध' लेख में लेखक ने एक संशलिष्ट रूपक के जरिये बाजार प्रबंधन में विज्ञापन, संस्कृति, साहित्य के घालमेल भरे प्रायोजनों पर गहरा व्यंग्य किया है। रामायणकालीन क्रौंच वध की प्रसिद्ध कथा इस प्रकार है कि तमसा नदी के किनारे महर्षि वाल्मिकी तपस्या कर रहे थे। एक वृक्ष पर बैठे क्रौंच–क्रौंची के जोड़े पर एक बहेलिये ने तीर चलाकर क्रौंच का वध कर दिया। क्रौंची विलाप करने लगी। यह दृश्य देख अत्यंत करूणा में भरे वाल्मिकी ने उस बहेलिये को श्राप दे दिया। श्राप जिस भाषा शैली में दिया गया वह काव्य रूप था और कहते हैं कि वही संसार की पहली कविता थी। इसी कारण वाल्मिकी को आदिकवि कहा जाता है। यशवंत व्यास ने यहां जो रूपक उठाया है उसके अनुसार वह क्रौंच युगल अपने पुनर्जन्म में मशहूर मॉडलिंग जोड़ा बना, बहेलियों का भी नया जन्म हुआ, उसने तीर–कमान वाला धंधा छोड़कर विज्ञापन फिल्में बनाने का धंधा शुरू कर दिया था। लोकगीतों में बार–बार आने वाले राजस्थानी प्रतीक चोली, लहंगा और विछुआ को लेकर उन्होंने सांस्कृतिक कायक्रमों के प्रयोजन, विज्ञापन, क्विज, प्रतियोगिता आदि की नीयत में छुपे हुए खोट को उजागर किया है एवं इन्हें बाजार की शक्तियों का माध्यम बनाये जाने की और इशारा किया है। इसके कुछ अंश दृष्टव्य हैं,

> ''महर्षि, क्रौंच–युगल के इस नए अवतार की काव्य धारा में उतरने से यकायक ठिठक से गए। उन्हें बताया जा रहा था कि बाजार जाते समय अब आर्यजन सामान की सूची नहीं देह के विभिन्न कलपुर्जों के मुहावरें ले जा सकेंगे। कामदेव के निर्देशन में टमाटर की चटनी तक पर नए रूपक तैयार हो गए है। भाषा–विज्ञान की नई दिशाएं खुल गई हैं। ''

'बापू की बेटी' अत्यन्त मार्मिक व्यंग्य है। रामकथा के विख्यात प्रवचनकार संत मुरारी बापू की बेटी की शादी में इकट्ठे हुए उनके भक्तों ने न्यौछावर में एक करोड़ रूपये इकट्ठे किये। इसके समाचार की सुर्खी थी कि ''महान भक्त मुरारी बापू की बिटिया के ब्याह में करोड़ रूपये के उपहार आये।'' इसी तरह प्रसिद्ध राजनेता और जनसेवक (अब स्वर्गीय) माधवराव सिंधिया की बेटी के ब्याह में करोड़ों रूपये रोशनी में खर्च किये। इन दोनों खबरों को आधार बना कर लिखी गई इस टिप्पणी में हरियाणा के गांव की लड़की जो कि अपनी प्रतिभा और परिश्रम के बल पर विजेता कप लिये हुए, गांव के चौधरी का ट्रैक्टर चला रही है, लेखक से बहस करती है। बहस का केन्द्र बिन्दु यह है कि एक भक्त की साधना और एक जनसेवक की सेवा के कुछ मूल्य होने चाहिए या अथवा नहीं ? वह कहती है कि,

> ''चलिए हम यह सवाल उस सेठ से नहीं पूछते जिसने काफी धन चूस कर इकट्ठा किया है ताकि उसकी बेटी एक सार्वजनिक रईसी का चाँटा झुग्गियों की मरियल कुंवारी लड़कियों पर मार सकें। मगर संत तथा जन नेता की तरह शब्दों की तिजारत में ऐल–फेल श्रद्धा कमा रहे सेवा–साधकों से पूछने की बड़ी इच्छा होती है कि बापू ये बेटियां किनकी हैं?"

अंत में वह ग्रामीण लड़की अपने बापू से जो सवाल पूछती है वह मानो हर उस अन्ध श्रद्धालु भारतीय से पूछा गया सवाल है जो अपनी गाड़ी कमाई में से कुछ सिक्के इस तरह न्यौछावर कर देता है। वह कहती है, ''मेरे बापू, तुम हमारी हंडिया के चावल उनकी बेटियों के ब्याह में पीले कर न्यौछावर करने से कब बाज आओगे?''

'कॉमरेड गोडसे' उपन्यास समाज में व्याप्त विभिन्न किस्मों के चरित्रों, विशेषकर मीडिया, कला, संस्कृति, समाजसेवा आदि क्षेत्रों में कार्यरत व्यक्तियों के चरित्र का एक ऐसा कोलाज प्रस्तुत करता है, जिसमें हर पाठक को अपने शहर अथवा इलाके के नामी–गिरामी लोगों की शक्लें नजर आती है। इसलिए कई पात्र कहानी के बहुत आवश्यक हिस्सा नहीं होने पर भी एक व्यक्तित्व विशेष की झलक प्रस्तुत करते हैं। और यों भी यह उपन्यास उतना कथाकेन्द्रित नहीं है जितना प्रवृत्तिकेन्द्रित है, इसका अर्थ यह है कि उपन्यास में कथातत्व उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना उस कथा के पात्रों की प्रवृत्ति। उपन्यासकार यहां उस प्रवृत्ति को रेखांकित कर रहे हैं जिसके तहत ये लोग अपनी सत्ता और शक्ति अर्जित करने के लिए दंगों की आड़ में भी अपनी रोटी सेकने से नहीं चूकते । चाहे वे प्रेमप्रकाश मेहरा जैसे अखबार के मालिक संपादक हो अथवा घुन्ने शाह रंगीले जैसे ताकतवर संपादक। पुस्तक का शीर्षक 'कॉमरेड गोड़से' जहां एक आश्चर्यजनक भ्रम की सृष्टि करता है, वहीं गहरे संकेत भी करता है। जैसा कि सभी जानते हैं विश्वभर में कॉमरेड शब्द मार्क्सवाद के कट्टर सिपाही एक दूसरे के लिए संबोधित करते हैं, जो कि साथी शब्द का पर्यायवाची है। दूसरी ओर गोड़से शब्द भारतीय इतिहास में उग्र हिन्दूवाद के प्रतीक के रूप में जाना जाता है। गांधी जी के हिन्दु–मुस्लिम एकता के प्रयासों को तुष्टिकरण समझते हुए एवं इसे हिन्दुत्व का अपमान मानते हुए, बौखलाए हुए एक उग्रवादी हिन्दु युवक नाथूराम गोडसे ने उनकी हत्या कर दी थी।

भारतीय इतिहास में गोडसे शब्द तभी से हिन्दु उग्रवाद का प्रतीक बन गया। इस तरह देखे तो दोनों शब्द वैचारिक दृष्टि से एक–दूसरे की विरोधी धुरी पर खड़े हैं। एक घोर वामपंथ तो दूसरा घनघोर दक्षिण पंथ। किंतु यशवंत व्यास दोनों अन्तर्विरोधी शब्दों को मिलाकर जहां एक ओर एक उलझन पैदा करते हैं, वहीं दूसरी ओर एक गहरा संकेत भी देते हैं जो उपन्यास में आगे जाकर खुलता है। यहां एक पात्र है, अखबार के दफ्तर में काम करने वाला 'चिमन चपरासी' जो कि हिन्दूवादी मानसिकता रखता है। दूसरी ओर उसी दफ्तर में वामपंथी विचारों वाला रिपोर्टर है 'कमल किशोर कांचवाला'। ये दोनों अपने सिद्धान्तों में आस्था रखते हुए ईमानदारी और दृढ़ता से अपने कार्य को अंजाम दे रहे हैं। पूरे समाचार जगत में जहां हर व्यक्ति अपनी रीढ़ को दुम की तरह हिलाता, झुकाता नजर आता है वहीं ये दोनों अपने–अपने मोर्चों पर स्वाभिमान का परिचय देते हैं। अखबार मालिक जब चमन चपरासी से अपनी कार साफ करने को कहता है तो वह साफ इन्कार कर देता है। हारकर मालिक प्रेम जी अपनी कार खुद ही साफ कर लेते हैं, तो दूसरी ओर समाचार विभाग का नाईट शिफ्ट इंचार्ज पत्रकार कमल किशोर कांचवाला मालिक से बिना पूछे नवगठित सरकार की पोल खोलता हुआ, व्यंग्यात्मक केप्शन के साथ एक फोटो छाप देता है, जो कि समाचार मालिक की मर्जी के खिलाफ होता है। हालांकि इसके परिणामस्वरूप अखबार मालिक उसे बर्फ में लगाने की गर्ज से उसका ट्रांसफर कर देते है और वह तत्काल इस्तीफा देकर समाचार पत्र की नौकरी छोड़ देता है। बाद के घटनाक्रमों में ये दोनों परस्पर विरोधी विचारधारा के होते हुए भी अपनी–अपनी निष्ठाओं पर चलते एक ही जगह आ मिलते हैं और उपन्यास के अन्त में मानो दोनों मिलकर एक मूर्त व्यक्तित्व की रचना कर देते हैं जो दोनों के मिलने से बना होता है। इसे उपन्यास के निम्नलिखित अंश से बखूबी समझा जा सकता है,

''सिन्दूर से दिपादिपाते माथे वाला चिमन चिल्लाया, 'जाओ तुम मुझे कॉमरेड कह देना। मैं नहीं डरता। मैं किसी से नहीं डरता। मैंने इस प्रेमजी का खून कर दिया। इसी ने हिंदुओं की गली में प्यारे मियां की लाश डलवाई थी।' 'और तुम मुझे गोडसे कह सकते हो।' कांचवाले ने चिमन चपरासी से बर्फीली आवाज में कहा–मैंने उस घुन्नेशाह रंगीले का खून कर दिया है जो खुद को कॉमरेड कहता था और उस प्रेमजी से मिल गया था।''(पृष्ठ 151)

यद्यपि उपन्यासकार इस नये अवतार का संकेत पूर्व में भी दे देते हैं। जबकि लॉन में बैठे प्रेम प्रकाश जी झपकी लेते हुए अर्धनिद्रा में नये–नये चित्र–विचित्र दृश्य देखते हैं और एक दृश्य में वे देखते हैं,

''तभी जमीन फटती है। उसमें से एक स्टोर रूम निकलता है। कमलकिशोर कांचवाला, प्रेमप्रकाश का दिया नोटिस लिए स्टोर रूम में से परेड करता निकल रहा है और पीछे–पीछे करीब पचास लोग है जिनमें से हर एक की शक्ल चिमन चपरासी जैसी, हू–ब–हू है।

ऊपर प्रेत हंस रहे हैं, नीचे परेड निकल रही है। परेड का आखिरी आदमी तिरछा देखकर प्रेमप्रकाश मेहरा को घूरता है।

प्रेमजी डरते–डरते पूछते हैं – तू कौन है, चिमन है?

'कॉमरेड गोडसे' 'पोमो'। लीला का प्रेत ऊपर से चिल्लाता है। और नीचे फटी हुई धरती फिर सिल जाती है।''(पृष्ठ 108)

इस प्रकार उपन्यासकार उपन्यास के शीर्षक शब्द 'कॉमरेड गोडसे' के द्वारा एक बहुत गहरे और अर्थवान विचार की ओर संकेत करते हैं। उपन्यास की सामान्य कथा यह है कि नमाज पढ़कर घर लौटते हुए प्यारे मियां का कत्ल कर दिया जाता है और उनकी लाश हिन्दुओं के मोहल्ले में मिलती है। लाश के पास एक चित्रकार का प्रदर्शनी में बंटने वाला एक ब्रोशर मिलता है जिस पर सूअर के चित्र बने होते हैं। इसी मुद्दे को लेकर दो समाचार पत्रों के मालिक संपादकों में अपना वर्चस्व बढ़ाने की एक ऐसी होड़ मचती है कि वे इसे सुनहरे मौके की तरह इस्तेमाल करते हैं। इसी कथा को विस्तार देने के क्रम में उपन्यासकार ने समाचार पत्रों के मालिक, संपादक, स्वतंत्र पत्रकार, कलाकार, एनजीओ, समाज के स्वयंभू ठेकेदार, राजनीतिक दलाल आदि का मर्मस्पर्शी और दिल दहला देने वाला चित्रण किया है। उपन्यास के प्रमुख पात्र प्रेम प्रकाश मेहरा, बाबा घुन्नेशाह रंगीले, आत्माराम बांडिया, राठी रिर्पोटर, लीलाशंकर, जटाशंकर, कमल किशोर कांचवाला, चिमन चपरासी आदि है।

उपन्यास में प्रेम प्रकाश, घुन्नेशाह, बांडिया, राठी जैसे पत्रकारिता से जुड़े चरित्र है जो अपनी सत्ता, अपने अखबार की सत्ता और रेवेन्यू बढ़ाने के लिए समाज को बांटने की किसी भी हद तक जा सकते हैं, तो दूसरी और प्यारे मियां और उनके बेटे का चरित्र चित्रण है जो सन् 1947 के मुकाबले 2005 में बदलती सांप्रदायिक मानसिकता और असहिष्णुता का दिग्दर्शन कराता है।

प्यारे मियां और उनके नौजवान बेटे मुर्तजा अली के व्यवहार एवं विचारों का अंतर दरअसल पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी का अन्तर है। उपन्यासकार ने इसे बारीकी के साथ उजागर किया

है और यह साम्प्रदायिक मानसिकता को समझने में हमारी मदद करता है। प्यारे मियां एक स्कूल में उर्दू के टीचर थे और सादगी की मिसाल थे। उनके अनुसार वन्दे मातरम प्रार्थना अपने धर्म के खिलाफ नहीं लगती थी। वे सुबह–शाम सब्जी लेने निकलते थे। शाकाहारी थे। बेटा उनसे खफा था। बेटे ने खास कट की दाढ़ी रखवाई थी। उसकी ख्वाहिश थी कि 'सच्चा मुसलमान' बने। प्यारे मियां का कहना था कि जब 'सच्चा हिन्दू' लफ्ज नहीं मिलता तो ' सच्चा मुसलमान' लफ्ज तंज के साथ इस्तेमाल करना लफजों के साथ खिलवाड़ है। बेटे का कहना था, उसने 1947 नहीं देखा। प्यारे मिंया का कहना था, वे 1947 का क्या अचार डालें जब जी ही 2005 में रहे है। यानी मजे की बात यह थी कि प्यारे मिया 2005 में जीना चाहते थे और उनकी अगली पीढ़ी, उनकी नूरें–नजर 1947 में घूमने को मचल रही थी।

उनका बेटा मुर्तजा अली सोचता है कि पहले जो गुण्डे लीडरों के लिए काम करते थे, अब खुद टिकट लेकर पार्टियां चला रहे हैं। आदमी अच्छा लीडर बने इससे बेहतर है अच्छा गुण्डा बने। गुण्डों की सबको जरूरत है और मजहब गुण्डो की दुनिया तक में बहुत काम का साबित होता है। दोनों बाप–बेटों के वैचारिक अन्तर को उपन्यासकार ने इस प्रकार चित्रित किया है,

> ''उनका बेटा अल्पसंख्यक मोर्चा बनाने की जुगत में था और मशहूर ब्रांड की घड़ी पहनता था। प्यारे मियां सुबह–शाम बदस्तूर सब्जी खरीदकर आ–जा रहे थे। वे कलाई में घड़ी की जरूरत ही महसूस नहीं करते थे। हिन्दु संगठनों की नई आमद को प्यारे मियां कुछ मुसलमान लीडरों की नीतियों का नतीजा मानते थे और बेटा, हिन्दू संगठनों की संख्या से अपनी रक्षा पंक्ति के सिपाहियों का इजाफा मिलाकर देखता था। प्यारे मियां आटा चक्की को आर्ट स्कूल की नौकरी से ज्यादा काम की करार देने लगे थे, जबकि आर्ट स्कूल में उनका टीचर बेटा उर्दू को देवनागरी में लिखे जाने के खिलाफ सरकार को दिए जाने वाले ज्ञापन पर दस्तखत का अभियान चला रहा था। ''(पृष्ठ 48)

वस्तुतः यहां उपन्यासकार यह बताना चाह रहा है कि मुस्लिम बस्ती में पहले जो दंगा सूअर को काटकर फैकने से होना संभव था, वह अब सूअर के चित्र मात्र से हो सकता है। यहां हमे बरबस भीष्म साहनी द्वारा 1947 के बंटवारे की पृष्ठभूमि पर लिखा हुआ चर्चित उपन्यास 'तमस' याद आता है जिसमें सूअर को काटकर मस्जिद में फेंका जाता है और दंगा भड़क उठता है। जबकि 2005 जो कि इस उपन्यास का रचनाकाल है, यह एक ब्रोशर से ही भड़क उठता है। इसीलिए राठी रिर्पोटर कहता है 'अब सूअर काटकर फेंकने की जरूरत नहीं, सूअर का एक ब्रोशर ही काफी है।' इस प्रकार यह उपन्यास हमारी सांप्रदायिक मनःस्थिति को समझने का एक मार्मिक दस्तावेज बन जाता है।

इन उपन्यास का एक और महत्वपूर्ण पहलू पत्रकारिता जगत के यथार्थ को उद्घाटित करना है। पत्रकारिता और समाचार पत्रों की प्रतिस्पर्द्धा और उनके सत्ता संघर्ष की राजनीति पर यशवंत ने इस उपन्यास में खुलकर हाथ चलाया है। सिद्धांतों पर चलने वाले एक वरिष्ठ पत्रकार नाईट शिफ्ट के इंचार्ज कमल किशोर कांचवाला को रातोंरात, स्टोर इंचार्ज बनाकर एक कोने में बैठा दिया जाता है उनकी गलती यह हुई कि उन्होंने अखबार मालिक से बिना पूछे नवगठित सरकार पर जोरदार व्यंग्य कर दिया था। समाचार मालिक प्रेम जी का इस अवसर पर मूल्यों की दुहाई देते हुए रचा हुआ पाखण्ड देखने लायक है। वे कहते हैं,

''कांचवाला साहब–ये जो आपने किया है, जनता के साथ मजाक है। सरकार मैंने–आपने अकेले नहीं चुनी थी। मुश्किल से बनी जनता की सरकार है। सारी विचारधाराएं एकजुट होकर देश चलाने के लिए आगे आई है। ऐसे कठिन समय में आपकों व्यंग्य सूझ रहा है। आप पत्रकारिता के मूल्य ही भूल गए? जनता के प्रति जवाबदारी ही भूल गए?'' (पृष्ठ 74)

तो यह है अखबार वाली दुनिया की असली हकीकत।

यशवन्त व्यास यहां इस दृष्टि से भी सजग है कि अखबारों के चाहे 'सेठाश्रित मॉडल' हो अथवा ''प्रगतिशील मॉडल'' दंगों की आग पर अपनी रोटियां सेकने में कोई पीछे नहीं है। वस्तुतः पत्रकारिता जगत में एक सेठाश्रित मॉडल होता है जिसमें प्रायः अखबारों के मालिक ही प्रधान संपादक होते है, और दूसरा प्रगतिशील मॉडल होता है जिसमें मालिक अलग होता है। संपादक अलग होता है। यहां उपन्यास में प्रेम प्रकाश मेहरा सेठाश्रित मॉडल वाले अखबार से है जो कि मालिक संपादक स्वयं ही है। तो दूसरी ओर बाबा घुन्नेशाह रंगीले प्रगतिशील मॉडल के प्रतिनिधि है। जो अखबार के संपादक है लेकिन उसका मालिक कोई और है। ये ऐसे श्रमजीवी पत्रकार है, जिनके देश के तीन प्रदेशों मे चार मकान, दो परिवार, कुछ बेटे–बेटी, लाखों जीवन्त सम्पर्क थे और ये रातों रात पाला बदलकर प्रेमप्रकाश जी के अखबार में सम्पादकीय करने के लिए तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार यह उपन्यास मीडिया के वास्तविक चाल, चरित्र और चेहरे को प्रकट करता है।

"अमिताभ का अ" अमिताभ के उदय से आज तक की यात्रा की ना सिर्फ एक झलक है, अपितु यह अमिताभ के बहाने समाज की और सामाजिक मूल्यों की भी यात्रा का लेखा–जोखा है। अमिताभ एक जरिया बन जाते हैं, उन मूल्यों को जानने, समझने का, जो उनके उदय के समय यानि सत्तर के दशक का सच थे और उनके साथ–साथ यात्रा करते हुये हम करोड़पति के भव्य सेट की हॉट सीट को हॉट बनाते सुपर ब्रांड अमिताभ तक जा पहुँचते है। यशवंत व्यास कहते है कि यह बारहखड़ी का केवल प्रथमाक्षर है, किन्तु वे केवल प्रथमाक्षर से ही पूरी बारहखड़ी की झलक दिखा देने में सक्षम साबित होते हैं।

'अमिताभ का "अ"' प्रारम्भ होता है सुपर ब्रांड के अवतरण से जहाँ यह सुपर सितारा बाजार का, नई अर्थव्यवस्था का केवल एक उपकरण मात्र नहीं है बल्कि बाजार के लिये भी नये मानक, नये आयाम तय कर रहा है, तयशुदा धारणाओं को तोड़ रहा है। बाजार की एक मात्र स्थापित भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त अंग्रेजी को चुनौती दे रहा है। "अमिताभ ने यह सिद्ध कर दिया है कि हिन्दी संचार की अद्‌भुत भाषा है जिसे अगर बिना हिचक के साथ सुधरे ढंग से आत्मविश्वास के साथ पूरे गले से बोला जाये तो वह अपना सांस्कृतिक वातावरण पूरी तरह बना लेती है और अंग्रेजी को बेदखल कर देती है। यह हिन्दी मैसूर या तमिलनाडू से आने वाले भी समझते है और उसमें किसी तरह बोलने भी लगते है। यह हिन्दी की नई क्षमता है कि वह पैसे और उत्साह के विनिमय की इतनी बड़ी भाषा बन गई है।" (पृष्ठ 25–26)

इस सुपर ब्रांड ने बाजारीकरण से ऊपर उठकर बाबूजी–माताजी को नमस्कार कर और घर–धन्धे के बारे में आत्मीय पूछ–ताछ करके बाजार को भी हैरान कर दिया। यशवंत व्यास की पैनी दृष्टि से आज की युवा पीढी को जुआ खिलाता चतुर कैसीनो मैनेजर छुप नहीं पाता और वे बड़ी सफाई से सामने ले आते है कि किस तरह एबी ब्रांड में "करोड़ों (लोगों) के सपने

से करोड़ों (रुपये) के सपने" में सफलतापूर्वक अवतरण कर लिया।

"प्रशंसक कहता है– ओ अमिताभ जी ! मेरे पैरों के नीचे की जमीन अस्थिर हो रही है। मेरा असीम सौभाग्य कि मैंने आपके युग में जन्म लिया और मुझे आपका फोन मिला।"(पृष्ठ 22)

मनभाते संगीत, चमचमाती रोशनियों, करोड़ों लोगों की आकांक्षाओं के रेले और सुपर ब्रांड की चमकार से चुँधियाई आँखों को यशवंत व्यास ले चलते है उस ओर जहाँ सुपर ब्रांड अनेक ब्रांड़ों को बेचने के लिए करोड़ों के करार कर रहे है। कहीं वे पंडितजी बन बोरोप्लस दे रहे है तो कहीं च्यवनप्राश से पुनर्योवन प्राप्त करने की सलाह दे रहे है।

यशवंत व्यास कहते हैं –

> "जो कभी गाँव से उखड़े हुये अगाध लोगों के सपनों के लिये लड़ता था, अब नई अर्थव्यवस्था की नौजवान पीढ़ी के साथ नाचता–गाता, उंगली पकड़कर आगे बढ़ाता, उदार, मृदुभाषी, सहज, विनम्र और भारतीय संस्कृति का आदरणीय बुजुर्ग बन गया, जिसका पूरे बाजार परिवार को समुचित आर्शीवाद चाहिये।"(पृष्ठ 42)

व्यास बाजार के बदलते समीकरणों में खोते जा रहे या कहे कि खो चुके जीवन मूल्यों पर तीखी दृष्टि डालते है। व्यंग्य की पैनी धार से उसे रेखांकित भी करते है। फिल्मों में उपभोक्ता ब्रांड़ों का शामिल होना, उनकी आपसी समझदारियाँ, जो केवल लाभ कमाने पर टिकी है, ठीक उसी तरह जैसे कभी कांग्रेसी रहे अमिताभ ब्रांड के साझेदार एक तरफ मुलायम–अमर सिंह है, जो जया बच्चन को राज्यसभा में भेज चुके है, तो दूसरी तरफ अंबानी उनके घरेलु मित्र है और तीसरी तरफ "सहारा" सुपर ब्रांड की पावर डायनेमिक्स को गतिमान कर रहा है।

यशवंत ब्यास व्यंग्य करते है कि "भले ही चॉकलेट दाँत खराब करते हों, अमिताभ चॉकलेट तो खिलाकर ही रहेंगे, "आखिर पप्पू पास हो गया है।" और यह भी कोई कहने की बात है–कि पैसे पप्पू देगा।" (पृष्ठ 47)

यशवंत व्यास अमिताभ के एक कलाकार के रूप में उदय, उसकी सामाजिक स्वीकार्यता और सुपर सितारे के रूप में उसकी स्थापना का विश्लेषण कर रहे हैं। अमिताभ के विश्लेषण को एक नये रूप में प्रस्तुत करते हुये यशवंत एक प्रयोग करते है। वे विश्लेषण को दो भिन्न दृष्टियों से प्रस्तुत करते हैं, एक वह जो धुर प्रशंसक है, आगे की दीर्घाओं में बैठ सीटी मारता और अपने हीरों की हर अदा पर मर मिटने को तैयार जमात को प्रतिनिधित्व करता हुआ यशवंत है।

यशवंत जो उन लोगों का प्रतिनिधि है जो सोचने और विश्लेषण करने जैसे फालतू काम नहीं करते, यह सोचने नहीं जाते कि यह जो अकेले दर्जनों से भिड़ जाने की अदा दिल चुरा ले गई तो इसका कारण क्या है ? यशवंत तो इतना जानता है कि "इसकी फिल्मों में सबसे बड़ा मूल्य था–दोस्ती। दूसरा, लगे हाथ आर–पार का फैसला। तीसरा– माँ और भगवान की शक्ति। चौथा, खाओ–पिओ–नाचो और जो गलत लगे उसकी धुलाई कर दो।" (पृष्ठ 64)

दूसरी तरफ व्यासजी के रूप में बुद्धिजीवी विश्लेषक मौजूद है जो अदा को सिर्फ अदा की तरह स्वीकार करने को तैयार नहीं है, वह अपनी बुद्धि की हथेली पर तर्क की खैनी मलेगा और उसमें से सत्व निकालने की कोशिश करेगा कि आखिर एक सांवला, लम्बा, दुबला, सामान्य से भी कम आकर्षक दिखता नौजवान इस कदर लोकप्रिय कैसे हो गया ?

"जनता को कुछ और नहीं, पलायनवादी मनोरंजन चाहिये, जो उन्हें शुद्ध चमत्कारिक और "मेक बिलीव" संसार में खड़ा कर सके, जिसमें वे अपने प्रिय सितारे के साथ नाच–गा रहे हों। चूंकि फिल्म निर्माता का तो दर्शक ही भगवान है, इसलिये यदि जनता पलायनवाद चाहती है तो वही देगा। इसी पलायनवाद के महानियन्ता के रूप में अमिताभ बच्चन प्रकट हुआ। इंडस्ट्री के इस उत्पादन की हैसियत उस स्तर पर पहुँच गई, जहाँ वहीं इंडस्ट्री था, यानि "वन मैन इंडस्ट्री।" (पृष्ठ 71)

व्यासजी उन राजनीतिक–सामाजिक परिस्थितियों की खोज–पड़ताल में लगे हुये है, जो अमिताभ जैसे उग्र, हिंसावादी, जनवाचक के लिये जमीन तैयार करती है। आजादी के बाद स्वप्निल आदर्शवादी के नेहरूकाल को त्यागी ग्रामीण दिलीप कुमार, शोषित सर्वहारा राजकपूर और पाश्चात्य आधुनिकतावादी देवआनन्द ने परदे पर उतारा।

नेहरू के करिश्मे के बाद आई राजनीतिक रिक्तता और इसमें शम्मी कपूर परम्परागत शैली को तोड़ते नायक की तरह प्रकट हुआ। राजनीतिक पटल पर जब इन्दिराजी का उदय हुआ तब एक प्रकार के पुनरूत्थान को प्रदर्शित करते राजेश खन्ना पहले सुपर सितारा की तरह अवतरित हुये। रूमानी उत्कर्ष की आयु लम्बी नहीं होती, अतः इसे भी चुनौती मिली।

अमिताभ ने इस चुनौती को साकार रूप दिया। शम्मी कपूर का रूका हुआ विद्रोह जो व्यक्तिगत मामलों तक सीमित था, सामाजिक सरोकारों का पहुँच गया। अमिताभ की छवि में निम्नवर्ग एवं श्रमिकवर्ग प्रतिबिम्बित हुआ। 1971 में युद्ध में जीतने वाली और 1975 में आपातकाल लाने वाली इन्दिरा गांधी की छवि दुर्गा के रूप में विभूषित हुई और उधर अमिताभ बच्चन की "दीवार" के एंग्री यंग मैन के रूप में स्थापना हुई। 1977 में इन्दिराजी के सत्ता से दूर होने के बाद के अस्थिर राजनीतिक परिदृश्य के समय अमिताभ का चरित्र भी कॉमिकल होता चला गया। व्यासजी इस नायक की पृष्ठभूमि पर नजर डालते–डालते उसके मूल तत्वों की चीरफाड़ से भी नहीं चूकते, जो मिलकर एक महानायक की संरचना करते है।

"अमिताभ बच्चन का व्यक्तित्व संवाद अदा करने की अद्भुत क्षमता पर खड़ा हुआ है.....यह नायक पिछली परम्परा से अलग अपनी भाषा और भूषा से तत्व लेकर आया था जिसके जिस्म पर श्रम की खायी चोंटे प्रकट होती थी। प्रचलित शहरी दृष्टि में यह "असंस्कृत" और "गँवार" था, जो लड़ाई की भाषा में तो सब संस्कार नष्ट करता ही था, कर्म में भी निहायत "भड़काऊ" तथा "अभद्र" था। लेकिन जैसे कि इस वर्ग की एक सुस्थापित धारणा भी है – वह मूलतः दिल का साफ, न्यायप्रियता के लिये जान देने वाला और जीवन को हंसी–खुशी से जीने का पक्षधर है।" (पृष्ठ 83)

व्यासजी अमिताभ के नायक रूप का विश्लेषण करते–करते उसके असल व्यक्तित्व से उसका मिलान करते हुये वह अर्न्तवस्तु खोलने का प्रयास करते है जो इस मानवेतर छवि के निर्माण के लिये ईंट–गारा उपलब्ध कराती है।

अमिताभ बच्चन के कुछ निजी पारिवारिक सम्बन्धों पर भी दृष्टि डालते हैं। पिता हरिवंश राय बच्चन के साथ अमिताभ का रिश्ता बेहद नजदीकी रहा है। वे हमेशा अमिताभ के कठिन समय में एक दीपक की तरह राह दिखाते रहे, वहीं माँ तेजी जीवन के व्यवहारिक पक्ष को समझने और निर्णय लेने में सहायक रहीं।

जया के साथ प्रेम और फिर विवाह अमिताभ के जीवन में लंगर की भूमिका रखते है। सदैव स्थायी का भाव इनके दाम्पत्य जीवन का उजागर पक्ष रहा है, बावजूद अमिताभ के उलझे–सुलझे प्रेम सम्बन्धों के। खासतौर पर रेखा और परवीन बॉबी के साथ उनके प्रेम प्रकरण चर्चित रहे।

एक लेखा–जोखा अमिताभ बच्चन के जीवन के एक अध्याय का भी है, जो उनके अल्पकालीन लेकिन दागयुक्त राजनीतिक जीवन से जुड़ा है।

यशवंत व्यास यह अध्याय एक निरपेक्ष दृष्टि से सामने रखते हैं। इन्दिरा गांधी के अवसान के बाद की राजनीतिक परिस्थितियाँ जब अमिताभ ने राजनीति में एक दोस्त की तरह कदम रखा। यशवंत मीमांसा करते है कि राजनीति कोई व्यक्तिगत उपकार या सरोकार की वस्तु नहीं है। इसमें वहीं व्यक्ति सफल हो सकता है जिसके सरोकार स्वयं से परे हो। अमिताभ ने इस क्षेत्र में अपराध किये या नहीं, यह विवाद का विषय हो सकता है किन्तु उन्होंने गलतियाँ अनेक की, इसमें कोई विवाद नहीं हो सकता।

"पहला धमाका हुआ था जब अपने बारे में अमिताभ बच्चन के मुँह से निकला– 'I'd been picked up and dumped into the cesspool of politics''. (पृष्ठ 131) आगे चलकर यशवंत व्यास एम.जी.रामचन्द्रन (दक्षिण सुपर स्टार और तमिलनाडू के लोकप्रिय मुख्यमंत्री) और अमिताभ बच्चन का तुलनात्मक विश्लेषण करते हैं।

राजनीतिक के असफल अध्याय, बोफोर्स की हार और उसके बाद कुछ असफल फिल्मों के बोझ से उपजा वैराग्य अमिताभ के स्वघोषित वानप्रस्थ का संभावित कारण बन गया। यशवंत अमिताभ दौर के बाद की फिल्मों में अमिताभ प्रभाव को देख रहे है। वे कहते है "जब से अमिताभ का प्रार्दुभाव हुआ, कोई भी अभिनेता, निर्देशक, भाषाई सुपर स्टार तक अमिताभ प्रभाव से मुक्त नहीं हो सके। यह एक लम्बे दौर में भी जारी रहा, जब अमिताभ ने अनगढ़ दाढ़ी बढ़ाकर अपने–आप को एकाकी कर लिया था। अमिताभ का एकाकी होना, दाढ़ी बढ़ाना, फिल्म करना, फिल्म न करना सब कुछ आवरण कथाओं के हिस्से बनते गये।

यशवंत व्यास अमिताभ बच्चन के व्यक्तित्व को तिहरे नजरिये से देखते आ रहे हैं, यशवंत का प्रशंसक नजरिया, व्यासजी का विश्लेषणात्मक नजरिया और "मैं" के रूप में दोनों से सहमत–असहमत होता हुआ समीक्षात्मक नजरिया।

अमिताभ के एक गहन साक्षात्कार से गुजरते हुये यशवंत व्यास एबीसीएल की व्यापारिक कल्पनाओं, उनकी नाकामी, बुरे नैराश्य के दौर और उससे उबरने की कथा को उल्लेखित करते जाते है। एक महानायक के फिर से उठ खड़े होने और सुपर ब्रांड में परिवर्तित हो जाने के दौर में व्यासजी तो लगभग बेहोश ही हुआ चाहते है, जबकि यशवंत के पर लग जाते है। यही है हमारे इस दौर की सच्चाई और सर्वोपरी खड़े है मानवेतर क्षमताओं के धनी अमिताभ बच्चन। यशवंत व्यास की कलम से यह नवप्रयोगवादी रचना कलात्मकता से भरपूर है और वे कहते है कि यह बारहखड़ी का केवल प्रथमाक्षर मात्र है।

संदर्भ सूची

व्यास, यशवंत। ''यारी – दुश्मनी''। जयपुर : रचना प्रकाशन। (2000) प्रकाशित।
व्यास, यशवंत। ''कॉमरेड गोडसे''। नई दिल्ली : अंतरा प्रकाशन। (2006) प्रकाशित।
व्यास, यशवंत। "अमिताभ का 'अ'"। नई दिल्ली : अंतरा प्रकाशन। (2007) प्रकाशित।